अध्याय ८

# अर्थविज्ञान (Semantics)

**विकासोऽर्थस्य तद्भेदाः, परिवृत्तेश्च हेतवः ।**
**एकानेकार्थसंज्ञानम्, अर्थविज्ञानमिष्यते ॥** (कपिलस्य)

(अर्थविकास, अर्थविकास के भेद, अर्थ-परिवर्तन के कारण, एकार्थक और अनेकार्थक शब्दों के अर्थ का निर्णय, अर्थविज्ञान है।)

## ८.१. अर्थविज्ञान क्या है?

अर्थ शब्द की आत्मा है, शब्द-शरीर है। ध्वनि-विज्ञान, पद-विज्ञान और वाक्य-विज्ञान भाषा के शरीर हैं। इनमें भाषा के शरीर या बाह्यरूप का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। अर्थ आत्मा है। अर्थविज्ञान में शब्दार्थ के आन्तरिक पक्ष का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। अर्थ क्या है? अर्थ का ज्ञान कैसे होता है? शब्द और अर्थ में क्या सम्बन्ध है? संकेतग्रह कैसे होता है? मन में बिम्ब-निर्माण कैसे होता है? बिम्ब से अर्थबोध की प्रक्रिया आदि भाषा के आन्तरिक पक्ष हैं। अर्थविज्ञान में शब्दों के अर्थ में विकास, अर्थविकास की दिशाएँ, अर्थपरिवर्तन के कारण, एकार्थक और अनेकार्थक शब्दों के अर्थ का निर्णय, संकेतग्रह के साधन आदि अर्थविज्ञान के बाह्य पक्ष हैं।

जिस प्रकार शरीर के ज्ञान के बाद आत्मा का ज्ञान अपेक्षित है, उसी प्रकार ध्वनि, पद, वाक्य के ज्ञान के बाद अर्थरूपी आत्मा का ज्ञान अपेक्षित एवं अनिवार्य है। अतएव भर्तृहरि ने वाक्यार्थरूपी प्रतिभा को आत्मा कहा है—

**यन्नेत्रः प्रतिभात्माऽयं भेदरूपः प्रतीयते।** (वाक्यपदीय १-११८)

## ८.२. अर्थविज्ञान का नामकरण

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में अर्थसम्बन्धी विवेचन को अर्थविज्ञान नाम दिया है।

**शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।**
**ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥**
(महाभारत, वनपर्व २-१६)

**यथा च चोदनाशब्दो वैदिक्यामेव वर्तते ।**
**शब्दज्ञानार्थविज्ञानशब्दौ शास्त्रे तथा स्थितौ ॥**
(श्लोकवार्तिक, शब्दपरिच्छेद-१३)

भाषाविज्ञान के अर्थ-विषयक विवेचन को आजकल अंग्रेजी में Semantics

(सीमेन्टिक्स) कहते हैं। यह नाम फ्रेंच विद्वान् मिशेल ब्रेआल (Michel Bre'al) द्वारा प्रचारित हुआ है। हिन्दी में इसके लिए अर्थविचार, शब्दार्थविचार, शब्दार्थ-विज्ञान आदि नाम भी प्रचलित रहे हैं। संप्रति अर्थविज्ञान नाम ही सर्वप्रिय है। अंग्रेजी में इसके लिए प्रारम्भ में अनेक नाम चले। जैसे—Rhematology (रहेमेटोलॉजी), Semasialogy (सीमेसिआलॉजी), Rhematics (रहेमेटिक्स), Sematology (सीमेटोलॉजी) आदि। एक दर्जन से अधिक नामों में से अब Semantics (सीमेन्टिक्स) नाम ही शेष रह गया है।

## ८.३. अर्थविज्ञान का इतिहास

विषय के रूप में 'अर्थविज्ञान' नया विषय है। प्रारम्भ में अनेक भाषाशास्त्रियों ने इसे दर्शन का विषय कहकर भाषाविज्ञान में रखने पर आपत्ति की थी। परन्तु अब यह भाषाशास्त्र का एक अंग बन गया है। भारतवर्ष में शब्द और अर्थ का विवेचन दर्शनशास्त्र का विषय रहा है। न्यायदर्शन और मीमांसादर्शन में शब्दशक्ति, शब्दार्थज्ञान, स्वतःप्रामाण्य—परतःप्रमाण्य आदि का गहन विवेचन हुआ है। वैदिक साहित्य में इन्द्र, वृत्र, वृत्रहा, नदी, उदक, तीर्थ आदि शब्दों की निरुक्ति (Etymology) मिलती हैं।[1] ऋग्वेद में अर्थ के महत्त्व पर कुछ मन्त्र हैं।[2] यास्ककृत निरुक्त ही अर्थविज्ञान का सर्वप्रथम भारतीय ग्रन्थ है। जिसमें निर्वचन के नियम, अर्थ का महत्त्व, मन्त्रार्थ की विधि, प्रकरण आदि का महत्त्व बताया गया है। इसके पश्चात् पतंजलिकृत 'महाभाष्य' और भर्तृहरि-कृत 'वाक्यपदीय' इस विषय के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।[3] अर्थविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले पाश्चात्य विद्वान् हैं—फ्रेंच विद्वान् मिशेल ब्रेआल, जर्मन विद्वान् पाल, के० रीजिंग, ए० बेनरी, पोस्टगेट, ब्रुगमान, स्वीट आदि।

## ८.४. अर्थ का महत्त्व

आचार्य **पाणिनि** ने भाषा का सार 'अर्थ' माना है। अतएव 'अर्थवान्' या सार्थक

---

१. संदर्भ के लिए देखें लेखककृत 'संस्कृत व्याकरण' भूमिका, पृष्ठ १०-११।

२. (क) ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥
(ख) ऋग्० १०-७१-४ (ऋग्० १-१६४-३९)

३. पाश्चात्य विद्वानों के कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं—1. Michel Bre'al का Essai de semantique, 2. Ogden एवं Rechards का Meaning of Meaning, 3. Carnap का Introduction to Semantics, 4. Linsky का Semantics, 5. Ullmann का Principles of Semantics.
भारतीय विद्वानों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं—१. डॉ० बाबूराम सक्सेना का 'अर्थविज्ञान', २. रवि बाबू का 'भाषातत्त्व', ३. डॉ० हरदेव बाहरी का Hindi Semantics, ४. लेखक-कृत 'अर्थविज्ञान और व्याकरण-दर्शन', ५. डॉ० भोलानाथ तिवारी का 'शब्दों का जीवन', 'शब्दों का अध्ययन', ६. डॉ० विश्वनाथ का 'अर्थतत्त्व की भूमिका', ७. प्रो० विजनविहारी भट्टाचार्य का 'वागर्थ'।

शब्दों को ही 'प्रातिपदिक' (मूल संज्ञाशब्द या प्रकृति) माना है—

**अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।** (अष्टा-१-२-४५)

**यास्क** ने अपने ग्रन्थ 'निरुक्त' अर्थात् निर्वचन, निरुक्ति (Etymology) का आधार ही अर्थ को माना है। अर्थ-ज्ञान के बिना निर्वचन असंभव है।

**अर्थनित्यः परीक्षेत।** (निरुक्त २-१)

यास्क ने कई स्थानों पर अर्थ का महत्त्व घोषित किया है। उनका कथन है कि जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता, वह ठूँठ है, भारवाहक पशु है। जो अर्थ जानता है, उसे ही समस्त कल्याण प्राप्त होता है। वही ज्ञान की ज्योति से पापों को नष्ट करके ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

**स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।**
**योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥**

(निरुक्त १-१८)

पतंजलि ने भी महाभाष्य में यही भाव व्यक्त किया है कि—'अर्थज्ञान के बिना जो शब्द मूलपाठ के रूप में दुहराया जाता है, वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्वलित नहीं करता है, जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा ईंधन'।

**यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते ।**
**अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ।।**(महाभाष्य आ० १)

ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'अर्थज्ञ' को अजेय योद्धा बताया गया है और अर्थज्ञानहीन को बिना दूधवाली गाय एवं फल-फूलहीन वाणी का संग्रहकर्ता बताया है—

**उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।**
**अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥**

(ऋग्० १०-७१-५)

यास्क ने भी अर्थ को वाणी का फल-फूल माना है।

**अर्थं वाचः पुष्पफलमाह।** (निरुक्त १-२०)

इससे स्पष्ट है कि भाषा की सार्थकता अर्थ से है। अर्थ ही भाषा का सर्वस्व है। अर्थहीन भाषा सन्तानहीन स्त्री के तुल्य है।

## ८.५. अर्थ का लक्षण

अर्थ के अनेक लक्षण दिए गए हैं। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में १८ और ओग्डेन एवं रिचार्ड्स ने Meaning of Meaning में अर्थ के १६ लक्षण दिए हैं।[1] भर्तृहरि ने संक्षेप में अर्थ का सुन्दर लक्षण दिया है कि—**'शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं।'** अर्थ का अन्य लक्षण नहीं है।

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखें लेखककृत 'अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन', अध्याय २, पृष्ठ ९३ से ९७।

**यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते ।**
**तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम् ॥** (वाक्य० २-३२८)

इससे स्पष्ट है कि अर्थ का सामान्य लक्षण 'प्रतीति' है। प्रत्येक व्यक्ति शब्द को सुनकर कुछ अर्थ समझता है। उसकी यह व्यक्तिगत अनुभूति 'प्रतीति' ही उसका अर्थ होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक भाषा में एक ही अर्थ के लिए पृथक्-पृथक् शब्द हैं। शब्दों के अर्थ स्वाभाविक नहीं, अपितु सांकेतिक एवं यदृच्छामूलक हैं। एक ही शब्द का विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ होता है। प्रत्येक भाषा का वक्ता और श्रोता अपनी भाषा में संकेतित अर्थ को ही ग्रहण करता है।

## ८.६. अर्थज्ञान कैसे होता है?

ज्ञान, प्रत्यय या प्रतीति भाषा का मानसिक पक्ष है। मन में विचार उठते हैं, वक्ता शब्दों के द्वारा उन्हें प्रेषित करता है, श्रोता कान से उन शब्दों को सुनता है, मन को उनके अर्थों की प्रतीति होती है। इसका विवरण अध्याय २-६ में दिया गया है। इस प्रकार भाषा का उद्गम और अर्थ-ज्ञान (अर्थावगम)-रूपी परिणति दोनों भाषा के मानसिक पक्ष हैं। भाषा वक्ता से लेकर श्रोता तक, आदि से अन्त तक, मानसिक पक्ष में अनुस्यूत है।

**अर्थज्ञान के दो साधन**—अर्थ का ज्ञान प्रत्यय या प्रतीति के रूप में होता है। इस प्रतीति या ज्ञान के दो साधन हैं—(१) आत्म-प्रत्यक्ष (स्व-प्रत्यक्ष या आत्म-अनुभव), (२) पर-प्रत्यक्ष (पर-अनुभव)।

**(१) आत्म-प्रत्यक्ष**—आत्म-प्रत्यक्ष का अर्थ है—स्वयं किसी वस्तु आदि को अपनी आँखों आदि से देखना या अनुभव करना। जैसे—मनुष्य, स्त्री, गाय, अश्व, पक्षी आदि को देखकर स्वयं ज्ञान प्राप्त करना। इसी प्रकार संतरा, नीबू आदि का रस स्वयं चखकर उनके रस का अनुभव करना। यह आत्म-प्रत्यक्ष है। आत्म-प्रत्यक्ष स्पष्ट, अधिक प्रामाणिक और स्थायी होता है। आत्म-प्रत्यक्ष के भी दो भेद हैं—(क) बाह्य-इन्द्रिय-जन्य, (ख) अन्तरिन्द्रिय-जन्य।

**(क) बाह्य-इन्द्रिय-जन्य**—बाह्य इन्द्रियाँ हैं—आँख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा। आँख से देखी हुई वस्तु, नाक से सूँघी हुई गन्ध, कान से सुना हुआ शब्द, त्वचा से छुआ हुआ पदार्थ और जीभ से चखा हुआ स्वाद, बाह्य-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान या अनुभव है। इनका ज्ञान और इनकी प्रामाणिकता इन्द्रियों ने स्वयं प्रत्यक्ष की है।

**(ख) अन्तरिन्द्रिय-जन्य ज्ञान**—अन्तरिन्द्रिय या अन्तःकरण मन है। कुछ सूक्ष्म चीजों का ज्ञान बाह्य इन्द्रियाँ नहीं कर पातीं, उनका ज्ञान मन करता है। जैसे—सुख या दुःख का अनुभव, शोक और क्रोध का अनुभव, भूख-प्यास का अनुभव आदि। शोक, दुःख, हर्ष, क्षोभ आदि का अनुभव व्यक्ति स्वयं मन से करता है। यह अन्तरिन्द्रिय-जन्य आत्म-प्रत्यक्ष है। अन्तरिन्द्रिय से होने वाला प्रत्यक्ष सूक्ष्म होने के कारण कम स्पष्ट और कुछ अंश तक अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय होता है।

**( २ ) पर-प्रत्यक्ष**—पर-प्रत्यक्ष का अर्थ है—जिसे पर या दूसरे ने देखा है। जिन देशों, स्थानों, पर्वतों, समुद्रों आदि को हमने स्वयं नहीं देखा है, उनका ज्ञान हम दूसरों के प्रत्यक्ष से करते हैं, जिन्होंने स्वयं उसे देखा है। पर-प्रत्यक्ष के आधार पर ही हम भूगोल में सभी देशों, नगरों, नदियों, समुद्रों, दर्शनीय स्थलों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। पर-प्रत्यक्ष में ही आप्तवाक्य, आप्त-वचन या प्रामाणिक व्यक्तियों के कथन भी आते हैं। अतएव वेद, शास्त्र, स्मृतियों आदि से हम पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, स्वर्ग-नरक, मोक्ष, ईश्वर, जीव, आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

## ८.७. शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

**संकेतग्रह**—शब्द और अर्थ में कोई सम्बन्ध है या नहीं? यह प्रश्न स्वाभाविक है। 'गाय' कहने से 'गाय' पशु अर्थ ही क्यों लिया जाता है? अश्व आदि अन्य पशु क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक सार्थक शब्द किसी अर्थ (वस्तु) विशेष का बोध कराता है। कौन सा शब्द किस अर्थ का बोध कराता है, यह संकेतग्रह पर निर्भर है। यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक भाषा में कोई शब्द किसी अर्थ को संकेतित करता है। प्रत्येक भाषा में इस शब्द का यह अर्थ होगा, यह संकेतित है। यह संकेत सामान्यतया स्वेच्छा-जन्य या यादृच्छिक (यदृच्छा-जन्य) होता है। प्रारम्भ में कोई व्यक्ति किसी विशेष अर्थ में किसी शब्द का प्रयोग करता है। बाद में वह शब्द उस समाज या उस भाषा में लोकप्रिय हो जाता है। वही उस शब्द का संकेतित अर्थ माना जाता है। एक ही शब्द (या ध्वनि-समूह) विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ बताता है—अंग्रेजी Know (नो, जानना) संस्कृत और हिन्दी में निषेधार्थक 'नो' माना जायेगा, knee (नी, घुटना) संस्कृत के अनुसार 'नी' (ले जाना) होगा। अतः यह माना जाएगा कि किसी एक ध्वनि का कोई एक अर्थ नहीं है। किसी शब्द से किसी अर्थ का सम्बन्ध स्थापित करना 'संकेतग्रह' है। इसी प्रकार किसी ध्वनि-समूह से किसी वस्तु का सम्बन्ध स्थापित करना या बोध कराना 'संकेतग्रह' है। यह संकेतग्रह लोक-व्यवहार एवं अनुशासन से होता है।

**आवाप-उद्वाप या अन्वय-व्यतिरेक**—'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः' 'तदभावे तदभावः व्यतिरेकः'। जिस शब्द के होने पर जो अर्थ बना रहेगा, उसे '**अन्वय**' कहेंगे। जिस शब्द के न होने पर जो अर्थ नहीं रहेगा, उसे '**व्यतिरेक**' कहेंगे। 'अन्वय' को '**आवाप**' और 'व्यतिरेक' को '**उद्वाप**' कहते हैं। बालक के अर्थज्ञान की प्रक्रिया को देखें तो ज्ञात होगा कि वह अन्वय-व्यतिरेक की पद्धति से भाषा सीखता है। 'गाय लाओ', 'गाय ले जाओ', 'घोड़ा लाओ', 'घोड़ा ले जाओ।' इन चार वाक्यों से बालक ४ शब्द सीखता है—गाय, घोड़ा, लाओ, ले जाओ। प्रथम दो वाक्यों में 'गाय' शब्द है। 'लाओ' कहने पर 'गाय' पशु लाया गया। 'ले जाओ' कहने पर वह 'गाय' हटाई गई। दोनों वाक्यों में 'गाय' शब्द रहा। इससे बालक को स्पष्ट हुआ कि 'गाय' शब्द का अर्थ यह गाय—नामक पशु है। अन्य दो वाक्यों से 'घोड़ा' का अर्थ स्पष्ट हुआ। 'लाओ' से लाना होता है,

'ले जाओ' से हटाना होता है, यह स्पष्ट हुआ। इस अन्वय-व्यतिरेक पद्धति से बालक को एक-एक शब्द का अर्थज्ञान होता है।

**बिम्बनिर्माण**—मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रत्येक शब्द का बिम्ब (चित्र) अंकित होता है। यह बिम्ब स्थायी रूप से मस्तिष्क में बना रहता है। 'गाय' देखने पर गाय का बिम्ब अंकित हुआ। पुनः गाय देखने पर वह बिम्ब उद्बुद्ध हो जाता है और हम गाय को पहचान लेते हैं। इसी प्रकार वस्तु का बिम्ब मन पर अंकित होता है, साथ ही उसका वाचक शब्द (गाय आदि) भी संस्काररूप में अंकित हो जाता है। इस शब्द (गाय शब्द) और अर्थ या वस्तु (गाय-पशु) के स्थिर मानसिक संस्कार को **बिम्ब-निर्माण** कहते हैं। इस बिम्ब-निर्माण का फल यह होता है कि 'गाय' शब्द से 'गाय' अर्थ संबद्ध हो गया और भविष्य में 'गाय' पशु को देखते ही 'गाय' शब्द उपस्थित हो जाता है।

**दार्शनिक दृष्टिकोण**—दार्शनिक या भाषाशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित (Interrelated) हैं। शब्द शरीर है; अर्थ आत्मा है। दोनों को मिलाकर 'सार्थक शब्द' बनता है। अर्थ के बिना शरीर 'निर्जीव' है और शब्द के बिना 'अर्थ' अग्राह्य या अप्रयोज्य (प्रयोग के अयोग्य) है। शब्द मूर्तरूप देता है और अर्थ उसमें चेतनता देता है। अतः सार्थक प्रयोग के लिए दोनों का समन्वितरूप में उपस्थित होना अनिवार्य है। अतएव भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में शब्द और अर्थ को एकतत्त्व के ही दो अभिन्न अंग माने हैं।

**एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ ।** (वाक्य० २-३१)

भर्तृहरि ने शब्द और अर्थ का वाचक-वाच्य सम्बन्ध माना है। वे 'अभिधा' शक्ति के अन्दर ही 'लक्षणा' और 'व्यंजना' का भी अन्तर्भाव मानते हैं।

**अस्याऽयं वाचको वाच्य इति षष्ठ्या प्रतीयते ।**
**योगः शब्दार्थयोस्तत्त्वमप्यतो व्यपदिश्यते ॥** (वाक्य० ३-३-३)

## ८.८. संकेतग्रह (अर्थज्ञान) के साधन

आचार्य जगदीश ने 'शब्दशक्ति-प्रकाशिका' में संकेतग्रह या अर्थज्ञान के ८ साधन माने हैं—

**शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान-कोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।**
**वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥**

१. व्याकरण, २. उपमान, ३. कोश, ४. आप्तवाक्य, ५. व्यवहार, ६. वाक्यशेष (प्रकरण), ७. विवृति (विवरण, व्याख्या), ८. प्रसिद्ध पद का सांनिध्य।

**(१) व्याकरण**—व्याकरण शब्दों के अर्थ के ज्ञान में अत्यन्त सहायक है। उससे ही प्रकृति-प्रत्यय, शब्दरूप, समास, तद्धित, कृत्, स्त्रीलिंग प्रत्ययों आदि का बोध होता है। कर्ता—कृ (करना) + तृ (ता प्रत्यय वाला अर्थ), कर्ता—करने वाला, अर्थ ज्ञात हुआ। पठ् से पठति, अपठत्, पठिष्यति—पढ़ता है, पढ़ा, पढ़ेगा का अन्तर व्याकरण ही

बतायेगा। वासुदेव—वसुदेव + अ (पुत्र अर्थ में), वसुदेव का पुत्र, अर्थ व्याकरण से ही स्पष्ट होगा।

**(२) उपमान**—उपमान का अर्थ है सादृश्य। सदृश वस्तु बताकर किसी शब्द का अर्थ बताना। जैसे—गौरिव गवयः (गाय के तुल्य नील गाय होती है)। इस उपमान से गवय (नील गाय) का अर्थ ज्ञात हो जाता है।

**(३) कोश**—कोशग्रन्थों से शब्दों का अर्थ ज्ञात करने में बहुत सहायता मिलती है। वृत्रहा, त्रिपुरारि, मध्वरि, काय आदि का अर्थ हमें ज्ञात नहीं है तो कोश-ग्रन्थ की सहायता से इनका अर्थ इन्द्र, शिव, विष्णु, शरीर आदि ज्ञात हो जाता है।

**(४) आप्तवाक्य**—यथार्थवक्ता को 'आप्त' कहते हैं। वेद, शास्त्र, गुरु, माता, पिता आदि आप्त में गिने जाते हैं। बालक माता-पिता को आप्त मानकर ही बचपन में सारी भाषा सीखता है। ईश्वर, जीव, पाप, पुण्य, मोक्ष आदि का ज्ञान हमें वेद आदि से ही होता है।

**(५) व्यवहार**—व्यवहार का अभिप्राय है—लोक-व्यवहार। बालक से लेकर वृद्ध तक लोक-व्यवहार से ही सबसे अधिक अर्थ-ज्ञान या संकेतग्रह करते हैं। संसार की सभी वस्तुओं के नाम हम लोक-व्यवहार से ही जानते हैं। माता-पिता, गुरु, साथी, मित्र आदि के व्यवहार से ही सम्बन्धियों के नाम, सम्बन्ध (भाई, चाचा, मामा आदि) का ज्ञान, पशु-पक्षियों के नाम, बाजार की सभी चीजों के नाम आदि जानते हैं। लोक-व्यवहार अर्थज्ञान का सर्वोत्तम साधन है।

**(६) वाक्यशेष (प्रकरण)**—वाक्यशेष का अर्थ है—प्रकरण। प्रकरण या प्रसंग नानार्थक शब्दों के अर्थ-निर्णय में सर्वोत्तम सहायक है। 'रस' और 'ध्वनि' शब्द के अनेक अर्थ हैं। प्रसंग के अनुसार इनके अर्थ का निर्णय होता है। जैसे—१. 'रसो वै सः' में रस का अर्थ 'आनन्द' लिया जाएगा। परमात्मा आनन्दरूप है। २. 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' (रसयुक्त वाक्य काव्य है) में रस का अर्थ 'काव्य-रस' है। ३. 'सरसं भोजनम्' (रसयुक्त भोजन) में रस का अर्थ भोज्य षड्रस है। ४. 'ध्वनिरात्मा काव्यस्य' (काव्य की आत्मा ध्वनि है) में ध्वनि का अर्थ 'व्यंजना' है। ५. 'कोकिल-ध्वनि' में ध्वनि का अर्थ 'शब्द या कूजन' है।

**(७) विवृति (विवरण, व्याख्या)**—विवरण या व्याख्या से अनेक शब्दों का अर्थ स्पष्ट होता है। विशेषरूप से पारिभाषिक, तकनीकी या दार्शनिक आदि शब्दों को बिना व्याख्या के नहीं समझा जा सकता है। जैसे—तन्त्र, विधान, विधि, शासन-पद्धति, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण-दर्शन, अद्वैत, द्वैत, त्रैत, विशिष्टाद्वैत आदि।

**(८) प्रसिद्ध (या ज्ञात) पद का सांनिध्य**—प्रसिद्ध या ज्ञात पदों की समीपता से अज्ञात शब्द का अर्थ ज्ञात होता है। जैसे—'बलाहक और विद्युत् का संयोग' में विद्युत् (बिजली) का अर्थ ज्ञात होने से बलाहक का अर्थ 'बादल' ज्ञात हुआ। 'पयोधि में मगर' मगर का अर्थ ज्ञात होने से पयोधि का अर्थ 'समुद्र' ज्ञात होता है। 'सुधा' के दो अर्थ हैं—अमृत और चूना। 'सुधा-सिक्त भवन' में भवन के सान्निध्य से 'चूना' अर्थ लिया जाएगा (चूने से पुता मकान), 'सुधा-पान से अमर देवगण' में देवगण के सांनिध्य से सुधा का अर्थ 'अमृत' लिया जाएगा।

पाश्चात्त्य विद्वानों ने अर्थबोध के तीन साधन माने हैं—

**१. व्यवहार** (Demonstration)—किसी वस्तु का बोध कराने के लिए उसे बार-बार दिखाना या उसकी ओर इंगित करना। इस तरह ब्लैकबोर्ड, पेन्सिल, कलम, चाक, पुस्तक, कापी, छात्र आदि शब्दों का बोध कराया जाता है।

**२. विवरण** (Circumlocution)—किसी वस्तु का विवरण देकर उसका बोध कराना। जैसे—समुद्र, पहाड़, जंगल, ताजमहल, किला आदि शब्दों का ज्ञान विवरण देकर कराया जाता है।

**३. अनुवाद** (Translation)—एक ही भाषा के कठिन शब्दों को या अन्य भाषा के शब्दों को अनुवाद के द्वारा समझाया जाता है। जैसे—शतक्रतु = इन्द्र, विवस्वान् = सूर्य। अंग्रेज को सेव = Apple, आम = Mango कहकर समझाया जाता है।

पाश्चात्त्य विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट अर्थबोध के ये तीन साधन उपर्युक्त आठ साधनों की तुलना में बहुत न्यून प्रतीत होते हैं।

## ८.९. संकेतग्रह के बाधक तत्त्व

निम्नलिखित तत्त्व संकेतग्रह में बाधक होते हैं—

**१. समरूपता का अभाव**—वक्ता और श्रोता में सम-रूपता, एक प्रकार का स्तर या समानाधिकरण्य (समान-एक, अधिकरण-आश्रय) का अभाव संकेतग्रह में बाधक होता है। यह तीन प्रकार का होता है—

**(क) भाषागत समरूपता**—वक्ता और श्रोता यदि एक-दूसरे की भाषा समझते होंगे, तभी संकेतग्रह या अर्थबोध होगा, अन्यथा नहीं। अतएव रूसी, चीनी, जापानी भाषा बोलने वाले से हिन्दी बोलने वाले का वार्तालाप दुभाषिये के बिना असंभव होता है। दोनों में भाषा की समता नहीं है।

**(ख) बौद्धिक समरूपता**—वक्ता और श्रोता का बौद्धिक स्तर समान होगा, तभी दोनों एक-दूसरे का अभिप्राय ठीक समझ सकेंगे। गँवार के सम्मुख रस-निरूपण, ध्वनि-सिद्धान्त या वक्रोक्ति की चर्चा 'भैंस के आगे बीन बजाना होगा'। यहाँ दोनों का बौद्धिक स्तर समान नहीं है।

**(ग) भावात्मक समरूपता**—वक्ता और श्रोता में यदि भावात्मक या हार्दिक समानता नहीं होगी तो अर्थबोध नहीं होगा। 'सहृदय' ही रसध्वनि को समझ सकेगा। नीरस व्यक्ति के लिए ऐसा काव्य अर्थहीन है।

**२. अशुद्ध अर्थज्ञान**—यदि शब्द का अशुद्ध अर्थ समझ रखा है तो उससे अर्थबोध नहीं होगा। यदि किसी ने 'वर्णी' का 'ब्रह्मचारी, शिष्य' के स्थान 'रंगवाला' अर्थ समझा है, या 'श्रोत्रिय' (वेदविद्) का अर्थ 'सुन्दर कानवाला' या 'शालीन' (शिष्ट) का अर्थ 'सुन्दर मकान वाला' समझा है तो उससे अर्थबोध नहीं होगा।

**३. संकेत का भूल जाना**—शब्द का अर्थ स्मरण किया था, परन्तु वह अनभ्यास के कारण भूल गया है तो उससे अर्थज्ञान नहीं होगा। 'अन्वय-व्यतिरेक' 'अपोद्धार

(विश्लेषण)' 'परिदेवना (विलाप)' का अर्थ भूल गया है तो इन शब्दों के प्रयोग से अर्थबोध नहीं होगा।

**४. आवृत्तिजन्य दृढ़ता का अभाव**—बार-बार आवृत्ति न करने पर शब्द का अर्थ विस्मृत हो जाता है। आवृत्ति से शब्द का अर्थ मस्तिष्क में बद्धमूल हो जाता है। मस्तिष्क में शब्द का अर्थ बद्धमूल न होने पर वह अर्थ तुरन्त उपस्थित नहीं होगा और अर्थबोध नहीं होगा।

ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में प्रत्यक्ष ज्ञान के बाधक ८ कारण गिनाए हैं। वे भी संकेतग्रह के बाधक तत्त्व के रूप में लिए जा सकते हैं। वे हैं—

**अतिदूरात् सामीप्याद् इन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् ।**
**सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च** ॥ (सांख्यकारिका-७)

**५. अतिदूरता**—वक्ता और श्रोता के एक-दूसरे से बहुत दूर होने पर संकेतग्रह नहीं हो सकेगा। दूरी के कारण दोनों को एक-दूसरे की आवाज स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ने से अर्थबोध नहीं होगा।

**६. अतिसमीपता**—अत्यधिक समीपता होने पर भी संकेतग्रह नहीं हो पाता। कोई कान के बिलकुल पास जोर-जोर से बोले तो वे शब्द स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ते, अतः अर्थबोध नहीं होता।

**७. इन्द्रियघात**—इन्द्रियघात का अभिप्राय है ज्ञानेन्द्रिय में किसी प्रकार की न्यूनता आ जाना। कान से शब्द सुना जाता है। यदि वक्ता या श्रोता अथवा दोनों कान के बहरे हों तो शब्द न सुन सकने के कारण संकेतग्रह न होने से अर्थबोध नहीं होगा।

**८. मन की अस्थिरता या अनवधानता**—यदि वक्ता या श्रोता अथवा दोनों के मन एकाग्र नहीं हैं और वे ध्यान से एक-दूसरे की बात नहीं सुन रहे हैं तो शब्द से संकेतग्रह नहीं होगा और न अर्थज्ञान होगा। रूप, रस, शब्द आदि सभी प्रकार के ज्ञान के लिए मन की एकाग्रता अनिवार्य है।

**९. अतिसूक्ष्मता**—यदि ध्वनि बहुत सूक्ष्म या धीमी है तो वह श्रोता के कान तक नहीं पहुँच पाती। अतएव संकेतग्रह के अभाव में अर्थबोध नहीं होता। बड़ी सभाओं आदि में आवाज धीमी होने से पीछे तक नहीं पहुँचती। पीछे बैठे श्रोता इसीलिए हल्ला करते हैं।

**१०. व्यवधान**—वक्ता और श्रोता के मध्य किसी प्रकार का (दीवार, पर्दा आदि) व्यवधान आने से वक्ता की ध्वनि श्रोता तक नहीं पहुँचती है, अतः अर्थबोध नहीं होता है।

**११. अभिभव**—अभिभव का अर्थ है—तिरस्कृत होना, दब जाना। पास में हल्ला या ऊँची आवाज हो रही हो तो धीमी आवाज दब जाएगी। वक्ता के पास विद्यमान कोई व्यक्ति जोर-जोर से बोल रहा हो तो वक्ता की ध्वनि दब जाएगी और श्रोता को उसकी बात स्पष्ट सुनाई न पड़ने से अर्थबोध नहीं होगा।

**१२. समानाभिहार**—समानाभिहार का अर्थ है—समान अर्थात् सदृश वस्तु में, अभिहार—मिल जाना। एक साथ कई बाजे बज रहे हों तो प्रत्येक की ध्वनि स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ेगी, क्योंकि सबकी आवाज मिल गई है। इसी प्रकार स्टेज पर कई वक्ता एक

साथ बोलने लगें तो उन सबकी आवाज मिश्रित हो जाएगी और श्रोता को किसी की भी बात स्पष्ट समझ में नहीं आएगी। इसको समानाभिहार कहते हैं।

अतएव भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में स्पष्ट निर्देश किया है कि शब्द केवल सत्ता-मात्र से अर्थ के बोधक नहीं होते, अपितु वे जब तक कान और मन के विषय नहीं हो जाते, तब तक अर्थ का बोध नहीं कराते हैं।

**विषयत्वमनापन्नैः शब्दैर्नार्थः प्रतीयते ।**
**न सत्तयैव तेऽर्थानामगृहीताः प्रकाशकाः ॥** (वाक्य० १-५६)

## ८.१०. शब्दशक्ति

शब्द से अर्थ का बोध होता है। इसमें शब्द बोधक है और अर्थ बोध्य। 'गाय का दूध पीओ' में गाय और दूध शब्द हैं, इनसे गाय-पशु और दूध-वस्तु का बोध कराया जाता है। प्रयोग या उपयोग में अर्थ (वस्तु) ही आता है, शब्द नहीं। शब्द अर्थ (वस्तु) का बोध कराकर निवृत्त हो जाता है। इसलिए भाषा में महत्त्व अर्थ का है। शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को वाच्य-वाचक या बोध्य-बोधक सम्बन्ध कहते हैं। शब्द वाचक या बोधक है, अर्थ वाच्य या बोध्य।

संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में गहन मनन-चिन्तन किया है। इस विवेचन को वे 'शब्दशक्ति' या 'वृत्ति-निरूपण' नाम से प्रस्तुत करते हैं। शब्दों से होने वाला अर्थ तीन प्रकार का है—वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। इसी आधार पर शब्द भी तीन प्रकार का होता है—वाचक, लक्षक और व्यंजक। इन तीनों में विद्यमान शक्ति या वृत्ति को अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहते हैं।

| शक्ति या वृत्ति | शब्द | अर्थ | उदाहरण |
|---|---|---|---|
| अभिधा | वाचक | वाच्य (मुख्य) | गाय, अश्व, मनुष्य |
| लक्षणा | लक्षक | लक्ष्य (गौण) | गंगा में घोष (कुटी) |
| व्यंजना | व्यंजक | व्यंग्य (प्रतीयमान) | शाम हो गई |

यहाँ पर काव्यशास्त्रीय ढंग से इनका विस्तृत वर्णन, भेदों-उपभेदों की चर्चा, अभीष्ट नहीं है। यहाँ पर केवल इनका सारांश दिया जा रहा है।

**अभिधा**—यह मुख्य वृत्ति या शक्ति है। अभिधा से बताया जाने वाला अर्थ मुख्य होता है। यह शब्द का लौकिक और व्यावहारिक अर्थ है। 'गाय दूध देती है', 'घोड़ा दौड़ता है', 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है' में गाय, घोड़ा, मनुष्य का लोक-प्रचलित अर्थ लिया जाता है। इसमें गाय आदि शब्दों को वाचक, गाय (पशु) आदि अर्थों को वाच्य और यह अर्थ बताने वाली शक्ति को 'अभिधा' कहते हैं।

**लक्षणा**—लक्षणा में तीन बातें होती हैं—१. मुख्य अर्थ में बाधा, २. मुख्यार्थ से सम्बद्ध अर्थ का लेना, ३. रूढ़ि या प्रयोजन कारण। 'गंगायां घोषः' (गंगा में कुटी)। गंगा जल की धारा को कहते हैं। जल की धारा में कुटी नहीं हो सकती, अतः गंगा के किनारे कुटी अर्थ होता है। 'देवदत्त गधा है', 'मोहन पशु है' में आदमी को गधा या पशु कहा है।

आदमी गधा नहीं हो सकता है, अतः अर्थ होता है कि वह आदमी गधा पशु के तुल्य मूर्ख और विवेकहीन है। इसमें गंगा आदि शब्द लक्षक हैं, गंगातीर आदि अर्थ लक्ष्य हैं तथा बोधकशक्ति 'लक्षणा' है।

**व्यंजना**—व्यंजना में व्यंग्य अर्थ मुख्य होता है। इसको प्रतीयमान अर्थ या ध्वनि कहते हैं। यह वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ से आगे की कोटि है। व्यंग्य अर्थ असंख्य प्रकार का हो सकता है। 'गंगायां घोषः' (गंगा में कुटी) में शीतलता, पवित्रता आदि अर्थ व्यंग्य अर्थ है। 'शाम हो गई' के सैकड़ों अर्थ हैं। शाम होते ही जिसको जो काम करना है, वह करे। इसी प्रकार 'सबेरा हो गया', 'दीवाली आ गई', 'होली आ गई' के सैकड़ों अर्थ निकलते हैं। 'दीवाली', 'होली' कहते ही बच्चों के लिए मनोरंजन, मिठाई खाना, रंग डालना आदि सैकड़ों अर्थ आ जाते हैं। इनमें 'गंगा' आदि शब्दों को व्यंजक, पवित्रता आदि अर्थों को व्यंग्य और शब्दशक्ति को व्यंजना कहते हैं।

## ८.११. एकार्थक और नानार्थक शब्द

शब्द दो प्रकार के होते हैं—१. एकार्थक, २. नानार्थक।

**१. एकार्थक शब्द**—एकार्थक शब्दों का एक ही मुख्य अर्थ होता है। जैसे—पुस्तक, नदी, वृक्ष आदि। एकार्थक शब्द भी विभिन्न कारणों से विभिन्न अर्थों का बोध कराते हैं। जैसे—'शाम हो गई'।

**एकार्थक और पर्यायवाची शब्द** (Synonyms)—पर्यायवाचक शब्दों को Synonyms (सीनोनीम्स) कहा जाता है। Syn (सीन) = सदृश, समान + onym (ओनीम) = नाम या अर्थ, अतः समानार्थक या एकार्थक। विभिन्न विचार-धाराओं के कारण एक ही वस्तु के अनेक नाम पड़ जाते हैं। प्रारम्भ में इनमें भावात्मक अन्तर रहता है। बाद में वह भेद विस्मृत हो जाने से पर्याय के रूप में इनका प्रयोग होता है। जैसे—राजा, नृप, भूपति, भूप, भूभृत् आदि। पर्यायवाची शब्द दो प्रकार के हैं—१. पूर्ण पर्याय (पूर्णतया एकार्थक), २. अपूर्ण पर्याय (समानार्थक)।

**(क) पूर्ण पर्याय**—पूर्ण पर्याय वे शब्द हैं, जो पूर्णतया एकार्थक हैं। इनमें एक के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—राजा-नृप-भूप; धरा-पृथ्वी-अवनि।

**(ख) अपूर्ण पर्याय**—अपूर्ण पर्याय वे शब्द हैं, जो अर्थ की दृष्टि से समानार्थक हैं; परन्तु प्रयोग की दृष्टि से इनमें भेद है। प्रत्येक स्थान पर एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इनमें तीन प्रकार का अन्तर होता है—**१. शैली-मूलक भेद**—शैली की दृष्टि से भेद। जैसे—आज्ञा-इजाजत, प्रसन्नता-खुशी, दया-रहम, कृपालु-रहीम, शुद्ध-पाक, अशुद्ध-नापाक। **२. विचारमूलक भेद**—विचार और भावना की दृष्टि से भेद। जैसे—ईश्वर-अल्लाह-गॉड, रानी-बेगम-क्वीन, फूल-गुल, मन्दिर-मस्जिद-चर्च, प्रार्थना-नमाज-प्रेयर, वैद्य-हकीम-डॉक्टर, विद्यालय-मकतब-स्कूल, देखना-घूरना, लेना-हरण। **३. प्रयोगमूलक भेद**—कुछ शब्द समानार्थक होने पर भी एक के स्थान पर

दूसरा नहीं आ सकता है। जैसे—'जलपान' के स्थान पर 'वारिपान', 'यज्ञवेदि' के स्थान पर 'यज्ञ-चबूतरा', 'नीर-क्षीर-विवेक' के स्थान पर 'जल-दुग्ध-विवेक' का प्रयोग नहीं हो सकता है।

**२. नानार्थक शब्द**—कुछ शब्द एक से अधिक अर्थों का बोध कराते हैं, उन्हें नानार्थक या अनेकार्थक कहते हैं। एक शब्द के अनेक अर्थ कैसे हुए, यह विवाद का विषय है। सामान्यतया क्रिया के अर्थ की समानता के आधार पर, गुण-साम्य, सादृश्य, संसर्ग आदि के आधार पर शब्द नानार्थक होते हैं। जैसे—कर—हाथ, किरण, टैक्स; शृंग—सींग, चोटी; नग—वृक्ष, पर्वत आदि।

भर्तृहरि ने सुन्दर विचार प्रस्तुत किया है कि समानार्थक और नानार्थक शब्दों का कहाँ पर क्या अर्थ लिया जाएगा, इसका निर्णय प्रयोक्ता के आधार पर होगा। प्रयोक्ता जहाँ जिस अर्थ में उनका प्रयोग करना चाहता है, वही अर्थ वहाँ अभिधेय है।

**बहुष्वेकाभिधानेषु, सर्वेष्वेकार्थकारिषु ।**
**यत् प्रयोक्ताऽभिसंधत्ते, शब्दस्तत्रावतिष्ठते ॥** (वाक्य० २-४०२)

## ८.१२. एकार्थक शब्दों का अर्थनिर्णय

एकार्थक शब्दों के भी प्रकरण, प्रसंग आदि के अनुसार विभिन्न अर्थ होते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में 'आर्थी व्यंजना' के प्रसंग में इसका विवेचन किया है। विश्वनाथ ने जिसे 'आर्थी व्यंजना' कहा है, वह भाषाविज्ञान के अनुसार 'अर्थ-परिवर्तन' है। विश्वनाथ ने एकार्थक शब्दों के अर्थ-निर्णय के लिए १० साधन बताए हैं। वे हैं—१. वक्ता, २. बोद्धा (श्रोता), ३. वाक्य, ४. वाच्य (वक्तव्य), ५. अन्यसंनिधि (अन्य की उपस्थिति), ६. प्रकरण, ७. देश, ८. काल, ९. काकु (व्यंग्य), १०. चेष्टा आदि।

**वक्तृ-बोद्धव्य-वाक्यानामन्यसंनिधि-वाच्ययोः ।**
**प्रस्ताव-देश-कालानां काकोश्चेष्टादिकस्य च ।**
**वैशिष्ट्यादन्यमर्थं या बोधयेत् साऽर्थसंभवा ॥**

(साहित्यदर्पण, परि० २-१६, १७)

**१. वक्ता**—वक्ता के भेद से अर्थ में भेद हो जाता है। जैसे—'शाम हो गई' से भक्त 'पूजा का समय', खिलाड़ी 'खेल समाप्त करो', सिनेमा-प्रेमी 'सिनेमा का समय' आदि अर्थ लेते हैं। प्रेमी प्रिया से—'रानी, क्यों रूठी हो?' में रानी का अर्थ प्रिया है।

**२. बोद्धा (श्रोता)**—श्रोता कौन है, किससे बात कही जा रही है, तदनुसार अर्थभेद हो जाता है। पत्नी पति से—'राजा, फिर कब मिलोगे?' राजा का अर्थ 'पति' है। अन्योक्तियों के पद्य प्रायः इसी प्रकार के होते हैं। बिहारी का दोहा 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु०' नव-विवाहिता पत्नी पर आसक्त राजा जयसिंह के लिए चेतावनी है।

**३. वाक्य-प्रयोग**—वाक्य में प्रयोग से शब्द का अर्थ भिन्न हो जाता है। 'अपि कुशलम्?' (आप सकुशल तो हैं?) 'अपि' का अर्थ 'भी' होता है, यहाँ प्रश्नार्थक है।

'आपने खा लिया है न!' यहाँ 'न' निषेधार्थक न होकर विध्यर्थक है। यह 'न' वस्तुतः संस्कृत का 'नु' अव्यय है। इसका अब भी पंजाबी, भोजपुरी आदि में प्रयोग है। पंजाबी—'त्वां नु कि दसों?' (तुमसे क्या कहें?), भोजपुरी—'रउवां खइली हँ नु' (आपने खा लिया है?)।

**४. वाच्य ( वक्तव्य )**—'क्या कहा जा रहा है', 'वक्ता का क्या अभिप्रेत है' तदनुसार अर्थभेद हो जाता है। 'अच्छा हुआ पापी चला गया' यहाँ 'चला गया' का अर्थ 'मर गया' है।

**५. अन्यसंनिधि**—अन्य व्यक्ति की उपस्थिति से भी अर्थभेद हो जाता है। शाकुन्तल में—'चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी' (अंक ३) (चकवी, अपने साथी से विदाई लो, रात आ गई)। नेपथ्य से शकुन्तला को संकेत दिया गया है कि 'रात्रि (गौतमी) आ गई है, चकवी (शकुन्तला) साथी (दुष्यन्त) से अलग हो जाओ'। रात्रि का अर्थ गौतमी है, चकवी शकुन्तला है, चकवा दुष्यन्त है। नए आगन्तुक से बात छिपानी होती है तो कहते हैं—'अच्छा, चलो'। 'अच्छा' का अर्थ है 'बात यहीं समाप्त करो'।

**६. प्रकरण**—प्रकरण या प्रसंग से अर्थभेद हो जाता है। 'ओग्डेन' एवं 'रिचार्ड्स' ने पाश्चात्त्य देशों में सर्वप्रथम प्रकरण (Context) की ओर भाषाशास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट किया। यह उनकी अपूर्व उपलब्धि मानी जाती है। 'सूर्योदय हो गया' के प्रकरणानुसार सैकड़ों अर्थ होंगे। 'बच्चो, उठो', 'संध्या करो', 'स्नान करो', 'खेत पर जाओ' आदि। यास्क ने निरुक्त में स्पष्ट कहा है कि 'प्रकरण के अनुसार ही मन्त्र का अर्थ करना चाहिए'।

**७-८. देश और काल**—देश और काल के अनुसार शब्द के अर्थ में भेद होता है। वाक्य 'कब और कहाँ' बोला जा रहा है, तदनुसार अर्थ होगा। 'पुलिस आ गई', 'गोली चल गई' आदि वाक्यों के देश और काल के अनुसार अलग-अलग अनेक अर्थ होंगे।

**९. काकु ( व्यंग्य )**—काकु का अर्थ है वक्रोक्ति या ध्वनिभेद। काकु से अर्थ में अन्तर हो जाता है। 'आपने अच्छा पत्र भेजा!' अर्थात् 'आपसे पत्र भेजने को कहा था, पर आपने पत्र नहीं भेजा'। 'आप बड़े भद्र पुरुष हैं' अर्थात् बहुत दुष्ट व्यक्ति हैं। काकु या व्यंग्य से उल्टा अर्थ निकलता है।

**१०. चेष्टा**—संकेत (इशारा) या आंगिक अभिनय से अभिप्राय व्यक्त किया जाता है। 'सेठ का इतना बड़ा पेट', 'तीन इंच का आदमी' यहाँ इशारे से पेट की विशालता, आदमी का नाटापन व्यक्त किया जाता है। यहाँ 'तीन इंच' का अर्थ 'तीन इंच' नहीं है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा का एक-एक शब्द अनेक या असंख्य अर्थों का बोधक हो सकता है। 'हाँ' से 'नहीं' का अर्थ और 'नहीं' से 'हाँ' का अर्थ तक लिया जा सकता है। यह देखते हुए कह सकते हैं कि संस्कृत का यह सुभाषित सत्य है कि '**सर्वे सर्वार्थवाचकाः**' (सभी शब्द सभी अर्थों का बोध करा सकते हैं)।

## ८.१३. नानार्थक शब्दों का अर्थनिर्णय

भर्तृहरि ने नानार्थक या अनेकार्थक शब्दों के अर्थ-निर्णय के १४ साधन बताए हैं—

**संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता ।**
**अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः ॥**
**सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः ।**
**शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः ॥**

(वाक्यपदीय २-३१७, ३१८)

**१. संयोग**—जिससे संयोग या सम्बन्ध प्रसिद्ध हो, उसके आधार पर नानार्थक का अर्थनिर्णय होता है। 'राम' शब्द के तीन अर्थ हैं—रामचन्द्र, परशुराम, बलराम। राम का धनुष, परशुराम का परशु (कुल्हाड़ी), बलराम का हल प्रसिद्ध है। केवल 'राम' कहने से सन्देह होगा। अतः 'धनुर्धरः रामः' (धनुषधारी राम) कहने से 'रामचन्द्र' अर्थ लिया जाएगा। 'परशुधरः रामः' 'परशुराम' होंगे और 'हलधरः रामः' कहने से 'बलराम' ही लिए जाएँगे। इसी प्रकार 'सशंखचक्रः हरिः' में हरि का अर्थ 'विष्णु' होगा।

**२. वियोग**—प्रसिद्ध वस्तु-सम्बन्ध का अभाव दिखाना 'वियोग' है। इससे भी अर्थनिर्णय होता है। राम का सीता से सम्बन्ध प्रसिद्ध है, अतः 'सीतावियुक्तः रामः' (सीता से वियुक्त राम) कहने पर 'रामचन्द्र' ही अर्थ लिया जाएगा। 'अवत्सा गौः' (बछड़े से हीन गाय) कहने पर 'गो' से 'गाय' अर्थ ही लिया जाएगा। 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं—गाय, पृथ्वी, किरण आदि। 'सशंखचक्रः हरिः' कहने पर हरि का 'विष्णु' अर्थ ही होगा।

**३. साहचर्य**—साहचर्य का अर्थ है 'साथ रहना'। जिनको साथ रहना प्रसिद्ध है, वही लिया जाएगा। 'रामलक्ष्मणौ' कहने पर साहचर्य के कारण राम का अर्थ 'रामचन्द्र' ही लिया जाएगा। भीम और अर्जुन के कई अर्थ हैं—भीम—कुन्तीपुत्र, भयंकर आदि, अर्जुन—कुन्तीपुत्र, वृक्षविशेष। 'भीमार्जुनौ' (भीम, अर्जुन) कहने पर दोनों कुन्तीपुत्र भीम और अर्जुन लिए जाएँगे। इसी प्रकार 'कृष्णार्जुनौ' में श्रीकृष्ण और पार्थ अर्जुन।

**४. विरोध**—जिनका विरोध प्रसिद्ध है, वही अर्थ लिया जाएगा। रामचन्द्र और रावण का विरोध प्रसिद्ध है, इसलिए 'राम-रावणौ' (राम-रावण) में राम से 'रामचन्द्र' अर्थ होगा। 'कर्णार्जुनौ' (कर्ण-अर्जुन) में कर्ण से राधापुत्र कर्ण और अर्जुन से पार्थ अर्जुन। कर्ण का 'कान' अर्थ नहीं लिया जाएगा।

**५. अर्थ (प्रयोजन)**—जिससे अर्थ या प्रयोजन सिद्ध हो, वह अर्थ लिया जाएगा। जैसे—गो का अर्थ गाय, पृथ्वी, किरण आदि हैं। 'दुग्धाय गां श्रय' (दूध के लिए गो का आश्रय लो) में दूध गाय से मिलेगा, अतः गो का अर्थ 'गाय' होगा। 'कृषये गां श्रय' (कृषि के लिए गो का आश्रय लो) में गो से 'पृथिवी' अर्थ होगा।

**६. प्रकरण (प्रसंग)**—प्रकरण या प्रसंग से अर्थनिर्णय होगा। संस्कृत के नाटकों में प्रायः यह वाक्य आता है—'यथा देव आज्ञापयति' (जैसी आपकी आज्ञा) में 'देव' का अर्थ 'राजा' है, देवता नहीं। 'मधु' के अनेक अर्थ हैं—वसन्त, शहद, शराब। प्रसंगानुसार

अर्थ होगा—'मधुमत्तः कोकिलः' (मधु-मत्त कोयल) में मधु का अर्थ 'वसन्त' होगा। 'मधु से सितोपलादि लेना' में मधु 'शहद' होगा।

**७. लिंग ( चिह्न )**—यहाँ लिंग का अर्थ पुंलिंग या स्त्रीलिंग नहीं है। लिंग का अर्थ प्रसिद्ध 'चिह्न' है, जिससे उसे पहचाना जाता है। मानस का अर्थ—मन और मानसरोवर है। 'मानस में काम-भावना जगी' में मानस से 'मन' लिया जाएगा और 'मानस में हंस' में मानसरोवर। पयोधर के अर्थ हैं—बादल, स्तन। 'व्योम्नि पयोधराः' (आकाश में पयोधर) में पयोधर 'बादल' होगा और 'वक्षसि पयोधरौ' (छाती पर पयोधर) में 'स्तन'।

**८. अन्य शब्द की संनिधि ( समीपता )**—समीपस्थ पदों या शब्दों की सहायता से अर्थनिर्णय होता है। जैसे—'राणा-शिवा' में अन्य पदों की सहायता से 'राणा प्रताप और शिवाजी' अर्थ होगा। 'मोती-जवाहर' में 'मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू', 'गाँधी-पटेल' में 'महात्मा गाँधी और सरदार पटेल' अर्थ होगा। 'लाल-बाल-पाल' से लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल।

**९. सामर्थ्य**—जिसमें उस कार्य को करने की सामर्थ्य होगी, वह अर्थ लिया जाएगा। हरि के अर्थ हैं—विष्णु, बन्दर, सूर्य आदि। 'बिन हरि-भजन न दोष नसाहीं' (हरि-भजन बिना दोष नष्ट नहीं होते) में हरि से 'ईश्वर' या विष्णु अर्थ होगा। उसमें ही दोष नष्ट करने की शक्ति है।

**१०. औचित्य**—औचित्य के आधार पर अर्थ-निर्णय होता है। द्विज का अर्थ है—ब्राह्मण, दाँत, पक्षी। औचित्य के आधार पर 'द्विजाः पठन्ति' (द्विज पढ़ते हैं) में द्विज से 'ब्राह्मण', 'द्विजैः खाद्यते' (द्विजों से खाया जाया है) में द्विज से 'दाँत' और 'द्विजाः उड्डीयन्ते' (द्विज उड़ते हैं) में द्विज से 'पक्षी' अर्थ लिया जाएगा।

**११. देश**—देश या स्थान की विशेषता के आधार पर अर्थनिर्णय होता है। केदार के अर्थ हैं—क्यारी, केदारनाथ। 'केदारे गांधिसरोवरः' (केदार में गाँधी-सरोवर) में केदार का अर्थ 'केदारनाथ' होगा। 'बदर्यां वसुधारा-प्रपातः' (बदरी में वसुधारा-प्रपात) में बदरी का अर्थ 'बदरीनाथ' होगा, 'बेर' नहीं। ये दोनों चीजें केदारनाथ और बदरीनाथ में ही हैं।

**१२. काल**—समय के आधार पर अर्थ-निर्णय होता है। 'प्रातः हरिरुदेति' (प्रातः हरि उदय होता है) में प्रातःकाल के कारण हरि 'सूर्य' लिया जाएगा। 'निदाघे हरिः तपति' (गर्मी में हरि तपता है) में हरि 'सूर्य' होगा। 'मधौ कोकिलः कूजति' (मधु में कोयल बोलती है) में मधु 'वसन्त ऋतु' अर्थ होगा।

**१३. व्यक्ति ( पुंलिंग, स्त्रीलिंग )**—लिंग-भेद से अर्थभेद हो जाता है। जैसे—दुर्गः (किला)-दुर्गा (पार्वती), कालः (समय, यम)-काली (दुर्गा), मित्रः (सूर्य)-मित्रम् (मित्र)। इसी प्रकार पापः (पापी)-पापम् (पाप), शिवः (शिव)-शिवा (गीदड़ी), कृष्णः (कृष्ण, काला)-कृष्णा (द्रौपदी), कपिलः (कपिलमुनि या पीला)-कपिला (पीली गाय), मुग्धः (मूर्ख)-मुग्धा (सुन्दरी)।

**१४. स्वर**—उदात्त आदि स्वरों के भेद से अर्थभेद हो जाता है। जैसे—'इन्द्रशत्रुः' में तत्पुरुष और बहुव्रीहि समास के कारण स्वरभेद से अर्थभेद हो गया। हिन्दी आदि में स्वर-भेद या ध्वनि-भेद (सुर-भेद) से अर्थभेद हो जाता है। 'आप आ गए' के स्वरभेद करके बोलने से प्रसन्नता, विस्मय, रोष आदि भाव व्यक्त होते हैं। काकु (स्वरभेद, व्यंग्य) के कारण 'न गमिष्यामि' (नहीं जाऊँगा) का अर्थ हो जाता है—'अवश्य जाऊँगा'।

वाक्यपदीय के टीकाकार पुण्यराज का कथन है कि ये साधन केवल दिशा-निर्देश के लिए हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य साधन होते हैं। जैसे—ष-स का भेद, न-ण का भेद, आंगिक अभिनय, मुख-विकार, नेत्र-विकार, हस्त-संकेत आदि।

## ८.१४. अर्थपरिवर्तन (अर्थविकास) की दिशाएँ

संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। भाषा भी परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। इस अर्थ-परिवर्तन को विकास-सिद्धान्त की दृष्टि से 'अर्थविकास' भी कहा जाता है। यह अर्थ-परिवर्तन तीन प्रकार का होता है—१. कहीं पर अर्थ का विस्तार होता है, २. कहीं पर अर्थ में संकोच होता है, ३. कहीं पर पुराने अर्थ के स्थान पर नया अर्थ आ जाता है। इन्हें ये नाम दिए गए हैं—

(१) अर्थविस्तार (Expansion of Meaning)

(२) अर्थसंकोच (Contraction of Meaning)

(३) अर्थादेश (Transference of Meaning)

इन तीनों के जो उदाहरण मिलते हैं, उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ स्थानों पर अर्थ अपने मूल अर्थ से उत्कृष्ट हो गया है और कहीं पर वह अपने मूल अर्थ से निकृष्ट, अपकृष्ट या घटिया हो गया है। इस दृष्टि से भी इनको दो भागों में रखा जाता है। ये उपर्युक्त तीनों भेदों में आते हैं; परन्तु सुविधा के लिए इन पर अलग भी विचार किया जाता है। ये भेद हैं—

(क) अर्थोत्कर्ष (Elevation of Meaning)

(ख) अर्थापकर्ष (Deterioration of Meaning)

### (१) अर्थविस्तार

कुछ शब्द मूल रूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया। जैसे—

**१. कुशल**—कुशल शब्द का अर्थ था—कुशान् लाति (कुशों को लाना या लेना)। कुश का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है, उससे हाथ में छेद होने या कटने का भय रहता था। अतः कुश लाना चतुरता का सूचक था। अतएव तीक्ष्ण बुद्धि को 'कुशाग्रबुद्धि' कहा जाता है। यह शब्द धीरे-धीरे 'कुश लाना' अर्थ को छोड़कर 'चतुरता' और 'निपुणता' का